सर्वोदयी एवं समावेषीय विकास हेतु गांधीजी की स्वेदशी भावना, स्वाबलंबन और सहकार संबंधी विचारों पर मंथन

लोकेश जैन[1]

सारांश

गांधीजी की स्वदेशी भावना सच्चे स्वराज व स्वाबलंबन की आधारशिला है जिस पर भारत जैसे ग्रामीण सामाजिक अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुरूप सर्वोदयी एवं समावेषीय विकास रूपी भवन का निर्माण उस सहकारी दर्शन के माध्यम से सहजता से किया जा सकता है जो प्रेम विश्वास, सहिष्णुता और सामाजिक सौहार्द का पर्याय है। स्वदेशी की भावना मूलतः परस्परावलंबन, श्रमसाध्यता और भाईचारे के समन्वित घटकों के साथ सहकारिता के द्वारा अहिंसक समाज रचना का स्वप्न साकार करने का सामर्थ्य रखती है जिसमें सुख, शांति और समृद्धि समन्वित रूप से समाविष्ट होती हैं। इस लेख में गांधीजी के स्वदेशी, स्वाबलंबन, सहकार और लोक आधारित ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्था संबंधी विचारों के आलोक में प्रबंधकीय प्रतिमानों को समझने का प्रयास किया गया है जो सहकारी संस्थानों की संचालकीय व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

स्वदेशी की भावना की आवश्यकता ⟹ स्वदेशी से स्वाबलंबन की सुनिश्चितता ⟹ स्वाबलंबन हेतु सहकार ⟹ सर्वोदयी एवं समावेषीय विकास ⟹ अहिंसक शांतिपूर्ण समृद्ध समाज संरचना

कुंजी शब्द- स्वदेशी की भावना, स्वाबंलंबन, सहकार पर गांधीजी के विचार, सर्वोदयी

गांधीजी ग्राम स्वराज, मंगल प्रभात, हिन्द स्वराज आदि प्रमुख कृतियों में सच्चे स्वराज हेतु स्वदेशी की भावना, आत्मनिर्भरता व सहकार आदि घटकों को समावेषीय अहिंसक विकास हेतु अनिवार्य मानते हैं। वे सहकार को लोकतांत्रिक विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था मजबूत स्तंभ के रूप में देखते हैं जिसके माध्यम से छोटे छोटे प्रयास संगठित होकर स्व पर की आवश्यकताओं की संतुष्टि कर सकते हैं, सबके सामने भय रहित, शोषण रहित होकर ससम्मान खड़े होने का साहस पैदा कर सकते हैं, स्वयं को उद्योग साहसिक के रूप में विकसित कर कदम से कदम मिलाते हुए राष्ट्रीय विकास मुख्य धारा में अपना महत्वपूर्ण योगदान सुनिश्चित कर सकते हैं।

सहकार पर गांधीजी के विचार....

गांधीजी का यह कथन समूह व्यवस्था को अधिक कार्यक्षम बनाने की दिशा में प्रभावशाली ही है कि 'बने वहाँ तक हरेक प्रवृत्ति सहकार के सिद्धान्त के अनुसार चले।'२० 'सहकारी पद्धति से खेती करने से अधिक उत्पादन मिलेगा।'२१ क्योंकि 'सहकार में मधुरता है, उसमें निबल और सबल सभी समान हैं, इसमें अवलंबन और लाचारी की जगह स्वाबलंबन तथा आत्मसम्मान का भाव होता है इसके सभी सदस्य परस्परालंबी होते हैं जो एक दूसरे की जरूरतों को पूरा करके सही मायनो में समाज, राष्ट्र और मानवता की सेवा करते हैं। यदि राष्ट्र को कुटुंब मान लिया जाय तो समुदाय के सभी सदस्य सह-

[1] प्रोफेसर-ग्रामीण प्रबंधन अध्ययन केन्द्रहए गुजरात विदयापीठ

कार्यकर हैं। इसलिए सहकार में निर्जीव यंत्रो की मदद की जरूरत नहीं है। बने जहाँ तक यंत्रों का न्यूनतम उपयोग करना है। इसी समाज की सलामती और आत्मरक्षा है।'२२

सहकारी प्रयासों के चलते सभी की कार्यक्षमता, कार्यकुशलता में निखार आयेगा उत्पादन में मात्रात्मक व गुणात्मक सुधार होगा। उसकी यही सहयोगवृत्ति उसे पशुवत होने से अलग करती है। इसमें परस्परावलंबी होने का फर्ज हम सभी का है। गांव अलग अलग नहीं किन्तु कुछ गांव मिलकर अपनी वस्त्र व अनाज की बुनियादी जरूरतों को पूरा कर सकेंगे। वस्त्र स्वाबलंबन को लेकर उन्होंने खादी उत्पादन को साकार को देश व्यापी बनाने हेतु जिस तरह संगठनात्मक तंत्र व तत्व की स्पष्टता की उससे वर्तमान प्रबंधन अपनी संगठनात्मक संरचना की सोच को परिष्कृत कर सकता है।

वे कहते हैं कि १९२५ में मैंने मद्रास की एक सहकारी मंडली से बात करते हुए कहा कि मैं हाथ-कंताई के द्वारा दुनिया की सबसे बड़ी सहकारी मंडली की स्थापना करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मेरा यह दावा गलत नहीं है यह बड़ी बात हो सकती है किन्तु गलत बात नहीं। क्योंकि यदि लाखों लोग कांतने के काम में सहकार नहीं करेंगे तो कताई उद्योग का उद्देश्य पूरा नहीं होगा। इसमें सहकार की आवश्यकता तो आरम्भ से ही है। केन्द्र से लेकर तृणमूल स्तर तक की सभी संरचना जीवंत संपर्क में रहेगी सभी के कार्य व अधिकार विकेन्द्रित रहेंगे और सभी समन्वय के साथ अपने अपने निर्धारित काम को समयसर चीवटता के साथ पूरा करेंगे। इस विशाल संगठन में सभी अंगों के मध्य नैतिक व आध्यात्मिक शुद्धता जरूरी है। पूनी बनाने वाले, रूई धुनने वाले, कातने वाले, बुनकर और खरीदने वाले आदि इस मंडली के सक्रिय सदस्य होंगे इन सभी के मध्य परस्पर सदभाव और सेवा का अनुबंध जरूरी है। सहकारी मंडली सफल होगी इसके सदस्य प्रामाणिक व ईमानदार होने चाहिए, उन सभी में सहकार का गुण होना चाहिए, सभी के सामने एक निश्चित प्रगति का ध्येय होना चाहिए।

सुप्रबंधन को नेतृत्व की निष्ठा, कर्मठता, कुशलता, योग्यता, दीर्घदृष्टि, निःस्वार्थवृत्ति, ईमानदारी आदि के प्रति हर समय सावधान रहना होगा क्योंकि ये घटक संगठन संरचना के अस्तित्व हेतु तत्वरूप हैं जिनमें चूक होने पर संगठन की समग्र तस्वीर पलभर में बदल जाती है और बरसों की मेहनत पर पानी फिर जाता है।

सहकारिता के उत्थान में गांधीजी के 'स्वदेशी की भावना' पर विचार.....

गांधीजी मंगल प्रभात में स्वदेशी की अवधारणा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'मनुष्य सर्व शक्तिमान प्राणी नहीं है इसलिए वह अपने पड़ोसी की सेवा करने में जगत की सेवा करता है। इस भावना का नाम स्वदेशी है जो अपने निकट के लोगों की सेवा को छोड़कर दूर वालों की सेवा करने या लेने दौड़ता है, वह स्वदेशी का भंग करता है।

स्वदेशी व्यक्ति में निहित वह भावना है जो व्यक्तियों को, प्रबंधको को और नीति-नियामक संगठनो को अपने आसपास की परिस्थितियों का उपयोग करके उनकी सेवा करने एवं बाहरी परिस्थितियों से दूर रहने की पेरणा देती है। यह हमारा फर्ज है कि अपनी जरूरतों को पूरा करने हेतु हम स्थानीय स्तर पर निर्मित वस्तु एवं सेवाओं का उपयोग करने का ईमानदारी से हर संभव यत्न करें। यदि हमारे पड़ोसी उन उत्पादकीय कुशलताओं से ससज्ज नहीं है तो उन्हें उसमें सहयोग करें। इससे उन पड़ोसियों को स्थानीय स्तर पर ही रोजगार मिल जायेगा जो व्यवसाय की शोध में हैं।

गांधीजी तो यहाँ तक कहते हैं कि हम उन वस्तुओं के उपयोग की कामना ही न करें जिनका हम उत्पादन नहीं कर सकते। स्वदेशी की भावना को एक अन्य मानवीय नजरिये से देखते हुए हम यह भी कह सकते हैं कि इकाइयां अथवा उनका प्रबंधन उन्हीं वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करे जिनकी वास्तव में स्थानीय लोगों को जरूरत है तथा जो सभी की खरीद क्षमता के अनुरूप हों। अपने लाभार्जन के लिए उपभोक्ताओं के अज्ञान अथवा आकर्षण की मृगमरीचिका का अनुचित लाभ उठाकर जरूरतें खड़ी करने की कोशिश कदापि न करें क्योंकि इससे समुदाय में विलासिता का मीठा जहर फैलता है, समाज में भेदभाव बढ़ता है जो केंसर की भांति राष्ट्र की जड़ों को हिलाकर रख देता है।

स्वदेशी का स्थानिकता से सीधा सरोकार है, इसमें द्वेष नहीं प्रेम है, इसमें कूपमंडूकता नहीं है इसलिए गांधीजी ने कहा था कि 'स्वदेशी धर्म जानने वाला अपने कुएं में नहीं डूबता है अर्थातब उसकी विचारशक्ति का दायरा संकुचित नहीं होता है। जो वस्तु स्वदेश में नहीं बन सकती अथवा महाकष्ट से बनती है उसे परदेश के द्वेष के चलते न खरीदकर अपने ही देश में बनाने बैठ जाने को स्वदेशी धर्म नहीं कहा जा सकता। क्योंकि स्वदेशी धर्म पालने वाला कभी द्वेष नहीं कर सकता। इसमें अपनेपन का रक्षण है किन्तु दूसरों के प्रति द्वेष, स्पर्धा व ईर्ष्या को स्थान नहीं।'

गांधीजी का स्वदेशी धर्म और व्रत मात्र आर्थिकवृत्तियों में स्वदेशी अभिगम की बात नहीं करता अपितु विकास की एक समन्वित अवधारणा को लेकर साथ चलता है। स्वदेशी की बुनियाद पारस्परिक सह-संबंध (सह-अस्तित्व) पर टिकी हुई है। स्वदेशी का बहुचर्चित व अंतिम भाग आर्थिक व औद्योगिक जीवन एकांकी नहीं है अपितु समन्वित रूप से स्वदेशी भावना के साथ धर्म, पंचायत, समाज व्यवस्था, शिक्षण व्यवस्था से जुड़ा है। इनको इस रूप में समझकर ही स्वदेशी की व्याख्या की जा सकती है। इस संदर्भ में वे कहते हैं कि धार्मिक विषय में मुझे अपने बाप-दादा के धर्म के साथ जुड़ा रहना चाहिए और निकटतम धार्मिक परिस्थिति का उपयोग करते रहना चाहिए। यदि उसमें कोई कमी महसूस हो तो उसे दूर करके धर्म की सेवा करनी चाहिए यही स्वदेशी भावना है। हर व्यक्ति को अपने धार्मिक वातावरण में सुधार लाना चाहिए, जड़ होकर नहीं बैठना चाहिए। इसका प्रभाव निश्चित तौर पर उसके व्यावसायिक व आर्थिक व्यवहारों पर होता है जिसे आधुनिक भाषा में व्यावसायिक नीतिमत्ता कहा जाता है।

इसी प्रकार राजकीय क्षेत्र में भी देशी संस्थाओं के उपयोग को ही योग्य एवं स्वेदशी भावना के अनुकूल माना जा सकता है। पंचायत व्यवस्था हमारी भारतीय संस्कृति की अभूतपूर्व देन है। ये पंचायतें लोगों द्वारा चयनित, लोगों द्वारा स्वीकृत, लोगों द्वारा सम्मानित एवं लोकमान्य थी जिनका स्थान परमेश्वर के तुल्य हुआ करता था अर्थातब न्यायप्रियता को लेकर ये पंचायत व्यवस्था अपनी प्रतिष्ठा कायम किए हुए थीं। पंचायतें सामाजिक नीति नियमों का पालन, आपसी झगड़ों का स्थानीय स्तर निपटारा, जरूरतमंदों की सामूहिक मदद की संगठित शक्ति, गांव में अनुशासन व्यवस्था, लोक भागीदारी आधारित सामूहिक सुविधाएं, अन्य गांवों एवं संस्थाओं के साथ गांव के हित में परस्पर अनुबंध आदि को लेकर असरकारक भूमिका निभाती रही हैं। यही इनका स्वदेशी धर्म रहा है।

गांधीजी कहते हैं कि मैं स्वदेशी व्रत का पालन करते हुए देशी संस्थाओं की रचना पर लक्ष्य केन्द्रित करता हूँ इसलिए में ग्राम पंचायत को पकड़े हुए हूँ। वास्तव में भारत एक लोकतांत्रिक राष्ट्र है जो हरेक हमले के सामने टिका रह सकता है। स्वदेशी की इस व्यवस्था में शक्ति है और यह हमारा स्वर्णिम अतीत ही नहीं वर्तमान भी है। यह व्यवस्था प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सहकारी संरचना को भी प्रभावित करती है या यूं कहें कि सहकारी व्यवस्था के संगठनात्मक पहलू से जुड़ी हुई है। आर्थिक क्षेत्र में स्वदेशी भावना

का पालन तभी संभव हैं जब हम अपने पड़ोस में उत्पन्न वस्तुओं का ही उपयोग करें अर्थात हमारे उपयोग या उपभोग से हमारे निकटतम पड़ोसी को लाभ होना चाहिए, हम भी उसकी जरूरत की कुछ वस्तुएं बनाएँ ताकि प्रेम, विश्वास व करूणा आधारित परस्परावलंबन स्थापित हो और स्थानीय अर्थव्यवस्था की नींव मजबूत हो। यदि हमारी मातृभाषा में हमारा शिक्षण होता और जो शोधें भारतीय वैज्ञानिकों ने की वे हिन्दी आदि मातृभाषाओं में भारतीय जनसमुदाय के सामने आ पाती तो इस अनमोल खजाने का लाभ करोड़ों भारतीय ले रहे होते, आम जन तक उनके प्रयोग व शोध होते। इससे ग्राम सुखाकारी के प्रश्न का निराकरण कभी का आ गया होता और सच्चे ग्राम स्वराज के अनुकूल परिस्थिति का सृजन हो गया होता।

स्वदेशी के अंतिम भाग आर्थिक व औद्योगिक में भी स्वदेशी भावना के त्याग से सम्पूर्ण देश को हानि पहुँची है। हिंद के बाहर की एक भी वस्तु व्यापार हेतु यहाँ नहीं लायी होती तो देश में दूध-दही की नदियां बह रही होती। माया रूपी पैसे के लालच को दूर रखते हुए और उसके दीर्घगामी दूषणों को समझते हुए ही भगवान श्रीकृष्ण ने दूध दही को गोकुल से बाहर जाने से रोका होगा क्योंकि यही राष्ट्र की खरी शक्ति व समृद्धि का आधार है। यदि हम लोभी नहीं बने होते, स्वदेशी का दामन नहीं छोड़ते तो परिदृश्य अलग होता।

उपभोग पक्ष पर लगाम कसते हुए गाँधीजी स्वेदशी व्रत की पालना हेतु निर्देशित करते हैं कि स्वदेशी का सिद्धांत पालने वाले को ऐसा पड़ोसी शोध लेना चाहिए जो उनकी जरूरतें पूरी कर सके। यदि उसमें इसके लिए किन्हीं कुशलताओं की कमी है तो उन्हें वह सिखाकर पगभर बनाने में मदद करना स्वदेशी धर्म है इससे उन अनेक बेरोजगार पड़ोसियों को रोजगार मिलेगा जो धंधे की शोध में हैं। तभी हिन्द का और हिंद के गावों का पोषण व रक्षण हो सकेगा। हम हिंद में बने हुए कपड़े पहने, हिन्द में उत्पन्न खोराक खाएं तथा दूसरे पर ललचाएं नहीं तभी स्वदेशी भावना का पालन संभव है। इसका पालन करने वालों को कुछ समय के लिए प्रतिकूलता महसूस हो सकती है।जरूरतें मर्यादित हों, यह भी आवश्यक है। सरकार आयात पर कड़क कर लगाकर स्वदेशी को प्रोत्साहन दे सकती है।

'अपना जीवन इस तरह से संगठित करो कि तुम्हारे पड़ोसी को कोई खलल न हो। यह सूत्र कोई कानून नहीं किन्तु जीवन का एक महान नियम है और अहिंसा व प्रेम के पालन की एक कुंजी है।'

स्वदेशी एक धार्मिक नियम है यदि प्रतिकूलता भी हो तो भी इसका पालन यम-नियम की भांति ही करना है। इससे उकताना नहीं है अपितु इसे जीवन का अभिन्न हिस्सा बना लेना है। स्वदेशी तो एक लक्ष्य है जिसके लिए एक साथ एकजुट होकर प्रयत्न करना है जो वस्तु अपने यहाँ नहीं मिल सकती हो उसके लिए ही बाहर से लाने की मंजूरी हो तभी स्वदेशी का पालन संभव है।

सहकारिताएं इस स्वदेशी मंथन से अपने सदस्यों में परपरावलंबन का जज्बा पैदा कर सकती हैं, एक दूसरे के प्रति प्रेम भाईचारा, सैहार्द जगा सकती हैं। सहकारी संगठनों के प्रबंधकगण अपने संगठन में मांग तय करने, कर्मचारियों की भर्ती करने, उत्पादन हेतु साधन, माल सामान व अन्य सामग्री की व्यवस्था करने एवं आपूर्ति में स्थानीय जरूरतों को प्राथमिकता देते हुए ऐसी व्यवस्था का निर्माण कर सकते हैं जिससे स्थानीय लोगों व परिस्थिति का न्यूनतम नुकसान होता हो और इनके निहित हितों का अधिकतम संरक्षण हो और सभी को कम कीमत कर उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुएं और सेवाएं मुहैया हो सकें तथा कुदरती संसाधनों के बेहतर प्रबंधन की सुनिश्चितता हो।

गांधीजी की दृष्टि में 'आत्मनिर्भरता' एवं सहकारी संस्थाओं की सुदृढ़ता..... अन्न और वस्त्र का

स्वाबलंबन स्थायी समृद्धि का आधार है जहाँ सहकारिताएं महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं क्योंकि उत्पाद भी वही और उपभोक्ता भी वही जहाँ मांग है तो खरीद शक्ति भी है, जहाँ आवश्यकता पूर्ति हेतु उद्यमितामय श्रमसाध्यता है तो कुदरती संसाधनों का न्यायोचित उपयोग एवं आय का विकेन्द्रीकरण है। इसमें स्थानीय लोगों की कुशलताओं का पोषणक्षम उपयोग है तो उत्पादन व उपभोग संबंधी आत्मनिर्भरता की सुनिश्चितता है। किसी भी राष्ट्र का विकास इसी आत्मनिर्भरता में निहित होता है।

यदि गांव वस्त्र अनाज आदि बुनियादी वस्तुओं में स्वाबलंबी बन जाते हैं तो ही उसे आत्मनिर्भरता कहा जा सकता है। आत्मनिर्भरता कूपमंडूक नहीं है। हमें पूर्ण स्वाबलंबन के नजदीक पहुँचना है। जिन वस्तुओं को हम पैदा नहीं कर सकते उन्हें बाहर से प्राप्त करने हेतु बदले में देने के लिए आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उत्पादन करना होगा।'१८ हमें आयात के संदर्भ मे सावधान रहना होगा नहीं तो हमें निर्यात का संतुलन बनाने हेतु अतिरेक उत्पादन करना पड़ेगा।

हमें यह विवेक हरदम रखना होगा कि उत्पादन व्यवस्था में हमारे कुदरती संसाधनों का अतिरेक शोषण न हो और उनका अस्तित्व खतरे में न पड़े। इस दिशा में किस तरह के सुसंगठित व सुव्यवस्थिति प्रयास करने की आवश्यकता है ।

'स्वाबलंबन' अर्थातब आत्म निर्भरता को लेकर एक और बात समझने की है कि हमें अपनी जरूरतों का विस्तार करने की बजाय संयमित करने की पहल पर बल देना होगा। पैसे के बल पर उन कुदरती नियामतों का व्याप नहीं बढ़ाया जा सकता जो जीवन का एकमात्र आधार हैं। यदि अनाज उगाना है तो धरती के उपजाऊपन को बनाए रखना होगा और मेहनतकश व विवेकपूर्ण तरीके से खेती करके जरूरतों का निर्वाह करना होगा। यही बात अन्य संसाधनों को लेकर लागू होती है। पैसा लेनदेन का माध्यम मात्र ही हो सकता है, खरी सम्पत्ति नहीं।

अन्य व्यावसायिक व आर्थिक प्रवाहों से परे सहकारी संस्थानों को लीक से अलग हटकर उपरोक्त दर्शन पर अवश्य विचार करना होगा। यदि इस तथ्य को हमारे समाज ने, नीतिकारों ने तथा संचालकों आदि अग्रणियों ने उसे तदानुरूप अर्थात जीवन के सच्चे घटक के रूप में समय पर समझ लिया होता तो संसाधनों की आज ये दशा नहीं होती और न ही भौतिकवादितावादी अति के आकर्षण पीछे मानव का पागलपन विनाश की हद तक बढ़ता तथा वह विकास के भ्रम में महाविनाश के वटवृक्ष का बीजारोपण इतनी तेजी से नहीं करता। गांधीजी अपनी बहुचर्चित कृति 'हिन्द स्वराज' में इस विभावना को संयममय जीवन के दायरे में रखते हुए सच्ची 'सभ्यता' के रूप में समाज के सामने रखते हैं जिसमें सभ्य समाज की कल्पना को साकार रूप प्रदान किया जा सकता है।

सहकारी खेती व्यवस्था- गांधीजी कुटुंब की सेवा के लिए गांव को नुकसान न पहुँचे, इसके विवेक की बात करते हैं। इसमें हम सभी को अपनी अपनी मर्यादाओं का ख्याल रखना है। सेवा की शक्ति से मर्यादाओ का पालन स्वतः ही हो जाता है। खेतों की जोत को बाँटने की बजाय गांव के लोगों के साथ मिलकर खेती करनी चाहिए। व्यावसायिक इकाइयों ने इस मर्म को समझ लिया और वे लोगों से अपने फायदे के मुताबिक लोगों की जमीन पर ही अनुबंध खेती व्यवस्था के तहत लोगों से अपनी मन-मर्जी के मुताबिक खेती कराने लगे। **गांधीजी लोक नियंत्रित व लोक कल्याणकारी व्यवस्था के रूप में सहकारी खेती की वकालत करते हैं** जिसमें वे मानते हैं उत्पादन व्यवस्था के सभी निर्णयों पर लोगों का नियंत्रण होगा और वे इस तरह खेती का उपयोग महज आर्थिक नफाकारकता के स्थान पर अन्न व वस्त्र स्वाबंलंबन के द्वारा व्यक्तिगत व सामूहिक सुख-

शांति में वृद्धि कर सकते हैं।

साधन सम्पन्नता, ज्ञान सम्पन्नता और मर्यादा सम्पन्नता अभिगम के जानकार भारतीय प्रबंध संस्थान अहमदाबाद के प्रोफेसर अनिल गुप्ताजी लोगों और स्थानीय संस्थाओं के विकास में इन घटकों की भूमिका को समझने पर बल देते हैं। वे लोक परम्परागत लोक ज्ञान विज्ञान में आस्था रखते है तथा व्यक्ति समाज और समष्टि के हित में वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति के साथ समायोजित करने की बात करते हैं। वे कहते हैं कि लोगों ने अपनी संस्कृतिजन्य मर्यादा सम्पन्नता से अपनी जीवनशैली को संयमित बनाया है अपितु इसमें निहित त्याग व समर्पण की भावना से अपने आसपास के लोगों व सृष्टि के प्रति अपनी संवेदनाओं को कम नहीं होने नहीं दिया। इससे उनका व संसाधनों का सह-अस्तिव कायम रहा। ये मर्यादाएं यम-नियम की भांति उनके जीवन का हिस्सा बनी जिसका पालन उन्होंने श्रद्धा के साथ किया। जहाँ समाज की व्यवस्थाएं कमजोर हुई हैं वहीं मर्यादा सम्पन्नता क्षरित हुई है। इस मर्यादा सम्पन्नता में उनकी ज्ञान सम्पन्नता और साधन सम्पन्नता का अहसास होता है।

उपसंहार

गांधीजी का चिंतन समग्रता को लिए हुए है जिसमें अर्थोपार्जन है तो स्थायी समाज रचना भी है, सामाजिक न्याय व समाता है, व्यावहारिक जीवनलक्षी शिक्षा है तो निरोगी समाज रचना की विचार भी, व्यावसायिकता के साथ नैतिकता का सयानापन भी, समाज के हर वर्ग को रचनात्मकता से जोड़ने की स्नेहिल कवायद भी ताकि स्वाबलंबन आ सके, आत्मसम्मान के साथ हर कोई जीवन यापन कर सके तथा समाज में सर्वत्र अमन-चैन, सुख-शांति व अभय का वातावरण हो।

गांधी के शैक्षणिक दर्शन जो सभ्यता व नैतिक मूल्यों के विकास के साथ आजीविकोपार्जन के स्थायी समाधान की तालीम देता है ऐसी मानव शक्ति का निर्माण करने का सामर्थ्य पैदा करता है जो समूची व्यवस्था को स्वाबलंबन, परस्परावलंबन, सहकार, प्रेम की बुनियाद पर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मजबूत कड़ी के रूप में विकसित कर सके। उनके दर्शन की समग्रता एक-दूसरे के साथ इस तरह से ओतप्रोत है कि किसी एक को अलग रखकर उसे समझ पाना नामुमकिन है। गांधीजी का अर्थशास्त्र व्यवसाय में नैतिक मूल्यों, ईमानदारी, निष्ठा, कर्मठता आदि की दरकार रखता है जिसके आलोक में ग्राम स्वराज के तहत गांधीजी अपने बुनियादी शिक्षण के विचारों को रखते हैं, काम करते हुए सीखने पर बल देते हैं, अक्षर ज्ञान को द्वितीय प्राथमिकता में रखते हुए कुशलताओं के विकास पर बल देते हैं, गणित के उपयोग में विवेक व मानवीय मूल्यों की बात करते हैं कि यह ज्ञान किसी को धोखा देकर, मुगालते में रखकर अर्थोपार्जन के लिए नहीं है अपितु हिसाब-किताब में शुद्धता लाने व आर्थिक समानता का आंकलन करने के लिए है, प्रकृति के व्यवहार व उपकार का ऋण अदा करने के लिए है तथा आपके अर्थोपार्जन के व्यवहारों को प्रकृति व समाज के अंतिम छोर पर रहने वाले व्यक्ति के हितों के अनुकूल बनाने के लिए है। इसीलिए गांधीजी का अर्थदर्शन हो या शिक्षण दर्शन या फिर स्वदेशी का भावना और ट्रस्टीशिप के सिद्धांत का दर्शन सभी में सर्वोदय की सुवास है और अन्त्योदय का कल्याण है जो अहिंसक अर्थतंत्र की रचना करता है जिसे सहकारिता की आत्मा से पृथक नहीं किया जा सकता।

व्यावसायिक प्रबंध जगत में आज पेशेवर कुशलताओं की दरकार बढ़ती जा रही है, इकाइयों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए अत्याधुनिक तकनीकी उपाय किए जा रहे हैं जिसके परिणाम स्वरूप सकल उत्पदन एवं वैयक्तिक उत्पादकता दोनों में निरंतर वृद्धि भी हो रही है, प्राकृतिक संसाधनों के अस्तित्व

की परवाह किए बिना उसको चूस लेने की अमानवीय वृत्ति से इनका बेहताशा शोषण को ही मानवीय विकास का प्रतिमान समझा जा रहा है, समाज अपने ही विनाश का जश्न मनाने में मगशूल है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी हमारे लिए वे युग पुरुष हैं जिन्होंने अत्यन्त सादगी के साथ जीवन यापन के हर क्षेत्र में ऐसा सुगम चिन्तन, समन्वित सोच, अहिंसक प्रयोग तथा तदानुरूप आचरण कर दुनिया को अचंभित कर दिया। महान वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन भी उनके बारे में अत्यन्त श्रद्धा के साथ कहते हैं कि आने वाली पीढ़ी शायद ही विश्वास कर सके कि ऐसा करिश्मायी हाड मांस का व्यक्ति इस दुनिया में रहा होगा जिसने अपने अहिंसा के अस्त्र का लोहा सारी दुनिया को प्रेम के साथ मनवा दिया। उनके प्रयोगजन्य अनुभव सम्पोषित विकासलक्षी सहकारी संस्थाओं के प्रबंधन की दिशा में मील का पत्थर हैं, प्रासंगिक ही नहीं अपितु विकल्प रहित हैं। यदि अहिंसक अर्थतंत्र व शांतिपूर्ण समाज की रचना करनी हो, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित दुखमापनुयात' की भारतीय संस्कृति साहित्य में निहित इस युक्ति को विकास के केनवास पर उकेरना होगा।

आज प्रबंधन अपने मानव संसाधन के साथ निर्जीव साधन से भी बदतर सलूक करता है, अपने ही समुदाय के साथ संवेदना रहित होकर स्वार्थपरता का व्यवहार करता है जो दोनों ही पक्षों के मध्य बेबजह तनाव की उत्पत्ति, मन भेद, मत भेद, संघर्ष व संवादहीनता का सबब बनता है जबकि गांधीजी का स्वदेशी की भावना, स्वाबलंबन, सहकार का ग्राम स्वराज दर्शन मानव और मानवीय मूल्यों को केन्द्र में रखकर चलते हुए सहकारी क्षेत्र से जुड़ी विविध प्रबंधकीय समस्याओं का स्थायी निदान प्रस्तुत करता है और समस्याओं को खड़ा होने से रोकता है।

गांधीजी की जमीनी सोच, मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण आचरण तथा सत्य-अहिंसा के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा जिससे जोड़कर वे जीवन हर पक्ष व व्यवहार को देखते है, उनकी नजर में सत्य और अहिंसा के सार तत्व को जीवन के किसी भी पक्ष से अलग रखना न सिर्फ बेमानी है अपितु अपने आप से छलावा है, समाज के प्रति गैर-जिम्मेदारापन का रवैया है और अंततः पतन का कारण है। सत्य और अहिंसा ही साधन शुद्धि के आधार हैं जिस पर वांछित प्रबंधकीय परिणाम टिके होते हैं।

उनके व्यक्तित्व में प्रबंधकीय नेतृत्व, अभिप्रेरण, मार्गदर्शन, समन्वय, सारभूत एवं सजग सम्प्रेषण, अनावश्यक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने की अद्भुत कला, कुशल संगठक की योग्यता तथा मंजे हुए व्यूहरचनाकार के गुण दिखाई देते हैं जिसके द्वारा आधुनिक प्रबंध जगत एक कुशल व असरकारक प्रशासक के गुण व कार्यशैली की सीख सकता है। अंत में उनकी ग्राम स्वराज की समन्वित सोच से निम्नलिखित प्रबंधकीय घटकों को सार रूप में ग्रहण कर सहकारिताओं को मजबूत बनाया जा सकता है-

- सदस्यों में काम करने हेतु आत्म विश्वास पैदा करना।
- सहकारी संस्थाओं के बेहतर प्रबंधन हेतु पेशेगत तकनीकी क्षमताओं का विकास करना।
- सतत काम करते हुए श्रमसाध्यता के साथ कुशलताओं का विकास करना।
- कार्य व समुदाय के प्रति ईमानदारी व निष्ठा का विकास करना।
- सामाजिक सौहार्द, भाईचारा और स्वदेशी की भावना के द्वारा सहज कार्य वातावरण तैयार करना।
- सहकारिताएं परस्परावलबंन के दायरे में रहकर एक दूसरे के कार्य मे सहयोग व सहकार करें।

- गांधीजी के सहकारी दर्शन से प्रतिस्पर्धा नहीं अपितु प्रेम की सीख लेकर एक दूसरे की योग्ताओं का विकास करें, सहकारी संस्था में सीखने- सिखाने की प्रक्रिया को स्वाभाविक प्रथा बनाएं।
- एक दूसरे का अनुचित प्रतिस्पर्धी बनकर नहिं अपितु पूरक बनते हुए कार्य करना तथा परस्परावलंबन की सुवास प्रसराना।
- आजीविका चयन व आजीविका व्यवहारों के संचालन में सत्य व अहिंसा के सिद्धांतो को स्थान देते हुए दूसरों के हितों पर अतिक्रमण न करना।
- प्रकृति के साथ अनुकूलन साधते हुए, जरूरतों को मर्यादित करते हुए तथा उपभोक्तावादी विकृतियों की आंधी में न बहते हुए आजीविका का स्वरूप व प्रमाण तय करना।
- जरूरतें खड़ी करने के लिए नहीं अपितु समाज की वास्तविक व बुनियादी जरूरतों की संतुष्टि के लिए आर्थिक व्यवहारों का संचालन करना।
- स्व के तत्व अर्थात स्व अनुशासन, स्व- नियंत्रण, स्वाबलंबन, स्वराज, स्व शासन आदि को व्यावसायिक व्यवहारों में समुचित स्थान प्रदान कर प्रबंधन को लोकाभिमुखी बनाना।

संदर्भ -

ग्राम स्वराज पुस्तक से ली गई पाद टिप्पणियों के मूल स्रोत-

१. यंग इंडिया ६.८.१९२५ पृ. २७६

२. नवजीवन २४.७.१९२१ पृ. ३७१

३. यंग इंडिया ५.३.१९३१पृष्ठ ४२

४. यंग इंडिया १८.६.३१ पृ.३४०-१

५. हरिजन बंधुं ३.१.३७ पृ.३४०-१

६. नवजीवन १२.४.१९३१ पृ. ९२

७. नवजीवन २९.३.३१ पृ.८१

८. हरिजन बंधु २१.१.४० पृ.३७०

९. स्पिचेज एन्ड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी पृ.३५०

१०. हरिजन बंधु २३.३.४७ पृ.७१

११. मंगल प्रभात-१९६० पृ.२७.

१२. हरिजन२९.६.३५ पृ.१५६.

१३. श्रीमद भागवत गीता अध्याय-२, ४७

१४. हरिजन९.१०.३७ पृ. २९२

१५. नवजीवन २९.११.३१ पृ.१११

१६. हरिजन बंधु प. ११ ; ३९, पृ.२८२

१७. व्यापक धर्म भावना-१९६१ पृ.३२३-३२

१८. खादी शा माटे? १९६२ पृ.२२३

१९. हरिजन बंधु ५.४.४२ पृ.९२-९)

२०. हरिजन बंधु २.८.४२ पृ. २३७

२१. हरिजन बंधु ९.३.४७ पृ. ४७

२२. द आइडियोलोजी ऑफ चरखा, पृ. ८६-८